International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 408-410

गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में सांस्कृतिक चिन्तन

डॉ0 राजेन्द्र सिंह
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जनता महाविद्यालय, चरखी दादरी, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

''क्योंकि जीवन पर खिंची तलवार है
दैन्य, दुख, अन्याय, अत्याचार है
आदमी पर आदमी का वार है
विश्व नैतिकता पतन के द्वार है।''[1]

कहने की आवश्यकता नहीं है कि समकालीन भौतिकवादी परिवेश में सांस्कृतिक संसृति सतत् रूप से विघटन की ओर अग्रसर है क्योंकि परिवर्तन की इस बयार ने एक तरफ जहाँ विचारशक्ति को प्रभावित किया है वहीं दूसरी तरफ नैतिक संस्कारों को भी पतन की ओर अग्रसर किया है। कविवर गिरिजाकुमार माथुर इस परिवर्तित परिवेश को देखकर आहत हैं क्योंकि आज परोपकार का स्थान स्वार्थ ने ले लिया है और सत्य का स्थान झूठ ले रही है। चारों तरफ छल–छदम् दिखाई दे रहा है, लोग अवसरवादी हो गए हैं। ऐसे विकट परिवेश में सांस्कृतिक तत्त्व प्रभावित न हों ऐसा हो ही नहीं सकता। कवि इस भाव सत्य का उद्घाटन 'नेता–गाथा' नामक कविता में इस प्रकार करता है–

''हर जगह
हर बात पर
जो हजारों झूठ बोले हैं
जरा–सा ढ़क्कन चोरियों से हटते ही
खौफ खा जाता है
नेता
एक फूला, गैस भरा गुब्बारा है
जिसे पिन भर भी सच्चाई
होती न गबारा है।''[2]

केवल यही नहीं नैतिक मूल्य विघटन की ओर अग्रसर हैं क्योंकि आज समाज पर पाश्चात्य सभ्यता– संस्कृति का रंग पर्याप्त मात्रा में चढ़ गया है। उसी के प्रभाव स्वरूप भारतीय सभ्यता और संस्कृति को सतत् रूप से विस्मृत किया जा रहा है। आज समाज में जातिवाद का जहर चरम सीमा पर पहुँच गया है जो समाज–संस्कृति के लिए घातक है। जातीयता और प्रांतीयता की इस भाव–भंगिमा ने सांस्कृतिक मूल्यों को विघटन के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। मूल्य–अमूल्यन के इस दौर में आज व्यक्ति के अस्तित्व और अस्मिता पर संकट के बादल मण्डारने लगे हैं। यहाँ तक कि उसकी पहचान भी धूमिल सी हो गई हैं–

''खत्म हुई पहचान की
अजब वक्त यह आया है
सत्य–झूठ का व्यर्थ झमेला
सबने खूब मिटाया है।''[3]

जातिपातिगत भेदभाव ने तो सामाजिक सौहार्द को निगल ही लिया है। जिसके प्रभावस्वरूप सामाजिक मान–मूल्यों और परम्पराओं को भी भूलाया जा रहा है। अतः हमारी सांस्कृतिक दशा चिन्तनीय है–

जातिवाद का जहर किसी ने
घर–घर में फैलाया है
वर्तमान में वृद्ध
भविष्यत आने से कतराया है
उठती हैं तूफानी लहरें, तट का है आभास नहीं
पृथ्वी है, सागर, सूरज है, लेकिन अभी प्रकाश नहीं।''[4]

भारतीय संस्कृति में माँ ममता की प्रतिमूर्ति मानी जाती है। माँ भी अपने दायित्व का निर्वहन बखूबी करती है। उसमें एक साथ दया, माया, ममता, मधुरिमा त्याग, समर्पण, परोपकार, सेवा–सहयोग आदि भाव भरे हैं माँ के ममत्व का बखान करते हुए कविवर माथुर कहते हैं –

''नींद बुलाने की थपकी दे,
नींद भरी तुम लोरी गातीं
थके हुए हम लोग कंधे से
सोते आंचल ओट तुम्हारा
तुमने ले लीं सभी बलाएं
बड़ा कर दिया खेल खिलाकर।''[5]

परिवेशगत विषमताओं से भी सांस्कृतिक पक्ष प्रभावित होता है। इसी विषमता ने व्यक्ति को कुण्ठित कर दिया है, साथ ही वह हीन भावना का भी शिकार हो रहा है। जिसके परिणामस्वरूप उसके पारस्परिक सम्बन्ध भी शिथिल हो गए। जिससे उसके जीवन में अनेक समस्याओं ने प्रवेश कर लिया। जीवन के इन्हीं दुख–दर्दों से समाज–संस्कृति भी प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होती है–

''यह आहें यह तड़पन कराह
यह पीड़ा सिसकन खलन प्यास
दुख दर्द छटपटाहट पुकार
x x x
यह घूम रही चिर व्याकुल
उफ गरम उसासें जीवन की।''[6]

परिवार समाज का अनिवार्य घटक हैं और संस्कृति का अभिन्न अंग परन्तु भौतिकवादिता और व्यक्तिवादिता की बढ़ती भावना एवं स्वार्थ ने पारिवारिक मूल्यों को प्रभावित किया है। इसी प्रभाव के फलस्वरूप मानव–हृदय से अवस्थित करूणा, त्याग, प्रेम, परोपकार जैसी भावनायें धूमिल होती जा रही हैं। जिससे संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन हो रहा है। इसी विघटन के परिणाम स्वरूप एकाकी परिवार को बढ़ावा मिला, जिससे पारिवारिक मूल्य भी निश्चित रूप से प्रभावित हुए। कविवर गिरिजाकुमार माथुर के हृदय में परिवार के प्रति गहन आस्था और निष्ठापूर्ण भाव थे। 'धूप के

धान' नामक काव्य–संग्रह में पारिवारिक प्रेम का उज्ज्वल स्वरूप बच्चों के नटखटपन में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है–

''आज न बच्चे घर में हैं कूड़ा करने को
खूब सफाई है आंगन, छत पर कमरों में
पर कुछ खाली–खाली सी है
आज नहीं अच्छी लगती यह
x x x
नहीं आज है
पहले इस कूडे करकट से
मन में झुंझलाहट होती थी
आज वही बच्चों का कूड़ा याद आ रहा।''[7]

कविवर माथुर ने अपनी के प्रति अगाध प्रेम को अभिव्यक्त किया है। इन्होंने स्वयं को घर से बाहर होने पर भी पत्नी के प्रति, आस्था व्यक्त की है। साथ ही विघटित होते पारिवारिक मूल्यों के विघटन को बचाने का सार्थक प्रयास किया ताकि भारतीय संस्कृति के मूलाधार परिवार और पारिवारिक मूल्यों को समृद्ध किया जा सके–

''धुले मुख–सी धूप यह गृहिणी सरीखी
मंद पग धर आ गई है
चाय की लघु टेबिलों पर
कभी बनती केतली की
प्यालियों की भाप मीठी
रसधार ताजे दूध की
या ढ़ाल कर निज प्यार
वह हर वस्तु की बनती समस्त मिठास
अधरों पर पिया के।''[8]

कविवर माथुर जी सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन को देखकर आहत हैं क्योंकि आज स्वार्थभाव ने सांस्कृतिक संसृति को ड़स लिया है। केवल कवि ही नहीं आज प्रत्येक व्यक्ति मूल्य विघटन के कारण स्वयं को ठगा हुआ अनुभूत करता है। यहाँ तक कि परिवार के प्रति आस्था भी अब डगमगाती दिखाई दे रही है। जीवन की इस विद्रूपता को माथुर जी इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं–

''मैंने देखा
मैं एक भूकम्प दबे नगर के नीचे फिरता हूँ
घबराया हुआ
जहाँ हर तरफ टूटे
मुँदे दरवाजे हैं
मलबे भरी गैलरियाँ
भपराये बरामदे
जगमगाते कटे–फटे खम्भे हैं
हर कदम पर
टुल्ड़ी कच्ची सीढ़ियों के ढ़ेर हैं–
यह दुनिया मेरी है।''[9]

माथुर जी ने व्यक्तिगत स्वार्थ एंव छल–प्रपंच को संस्कृति के लिए घातक माना है। वे स्वार्थ रहित समाज की कामना करते हैं तथा पीड़ित और त्रस्त लोगों के प्रति संवेदना व्यक्त करते हैं, साथ ही अन्याय और अत्याचार के खिलाफ लड़ने वाले व्यक्ति को साहसी और स्वाभिमानी कहकर उनकी प्रशंसा करते हुए उन्हें संस्कृति के चितेरे कहकर सम्मानित करते हुए कहते हैं –

इस लाली का मैं तिलक करूं हर माथे पर
दूँ उन सबको जो पीड़ित हैं मेरे समान
दुख दर्द, अभाव, भोग कर भी जो झुके नहीं
जो अन्यायों से रहे जूझते वक्ष तान।।''[10]

वर्तमान परिवेश में अन्याय और अनीति चरम शिखर पर पहुँच गये हैं। केवल यही नहीं द्वेष, नीचता, लालच और विग्रह रूपी दैत्यों ने हमारी सांस्कृतिक धरोहर पर पर्याप्त मात्रा में कुठाराघात किया है। माथुर जी इन सब की यथार्थ अभिव्यक्ति इस प्रकार करते हैं–

जन जीवन के हर पहलू में
कर दिये अनीति पिशाच खड़े
छल,कपट, द्वेष, नीचता, दगा
तेरे माथे हैं दाग
हमारी नैतिकता की चोरी का
वन बज्र गिरेगा पाप
युगों की तेरी आदम खोरी का।''[11]

आज व्यक्तिगत मूल्य पूर्णतः विघटन की ओर हैं। कवि स्वार्थ एवं अहं भाव को त्याग कर विश्व कल्याण की कामना करता है जो भारतीय संस्कृति का मूलाधार है–

''सात सागर का महाविष गीत मैं भर गा रहा हूँ
मैं जमाने को जमाने सर कटाने जा रहा हूँ
जग समझ पाया कहाँ मैं प्रलय हूँ या अमर सृष्टा
मैं मिटाकर विश्व को, फिर से बनाने आ रहा हूँ।''[12]

इस प्रकार माथुर जी व्यष्टि ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानवता के कल्याण का चिन्तन करते हैं–

''किंतु धरा मृत्युंजय
स्वर्ग नया पा गई
सदियों के तिमिर पार
मानवता आ गई।''[13]

केवल यही नहीं कवि मानवता के विकास की बात करता है ताकि सांस्कृतिक विघटन को रोका जा सके। कवि के इस दृष्टिकोण में हमें संस्कृति के प्रति आस्था और अगाध प्रेम स्पष्ट रूप से दिखाई देता है–

''रूकता नहीं कभी गति का पहिया
अविरल चलता विकास का क्रम
यह पास लिये आता है मनुज समाज नया
जब दुख की सत्ता भर जायेगी
पीले बासी फूलों–सी।''[14]

इस भौतिकवादी परिवेश में व्यक्ति यंत्रवत् कार्य करता है। धनार्जन के लिए वह कुछ भी करने को तत्पर है। ऐसी स्थिति में नैतिकता का कोई मूल्य नहीं रह जाता है। माथुर जी समकालीन परिवेश का जीवन्त चित्रण करते हुए कहते हैं–

''अर्थ उपनिवेश बनते हैं
मूल्य बाजारों में बिकते हैं
विक्रय होता आदर्शों का
देश, व्यक्ति का, संस्कृतियों का
लोकतंत्र भी यहाँ जाल है
आत्मा अंतःकरण माल है।''[15]

प्रेम भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। यह एक साथ विभिन्न रूपों में व्यक्त होता है लेकिन व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण प्रेम का स्थान नफरत ने ले लिया है। जिससे नैतिक मूल्यों में विघटन हुआ है। इस विघटन को लेकर माथुर जी आहत हैं। वे प्रेम और त्याग तथा सहनशीलता जैसे सांस्कृतिक मूल्यों का जीवन में उतारना चाहते

हैं। यथा–

''हमने भी सोचा था पहले इस जीवन में
सबसे अधिक मूल्य होता है कोमल भावों का
पर ठोकर पर ठोकर खाकर हमने जाना
मन के संघर्ष से बाहर के संघर्ष अधिक बोझिल हैं।''[16]

प्रेम जीवन का केन्द्र बिन्दु है। हमारा सारा जीवन इसी पर आधारित है। माथुर जी प्रेम पर अपना सर्वस्व अर्पित कर देना चाहते हैं । यथा–

''मैं आज लुटाता हूँ तुम पर
जो कुछ सुन्दर इस जीवन में
जिससे चिर होवे भोलापन
जुग–जुग उजले पूनों तुम में
ध्रुव सा अनजान सम्मोहन हो
कोरों की लज्जित चितवन में
मैं आज लुटाता हूँ तुम पर
जो कुछ सुंदर इस जीवन में।''[17]

जीवन–संघर्ष में प्रेम ही वह तत्त्व है जो टिकाऊ है जीवन का सार तत्त्व है, उसका आधार है। जो जीवन में ताजगी भर देता है। यथा–

''पिछली इसी बसंत रात की याद उमड़ जाती है
जब तुम पहली बार मिली थी
पीले रंग की चूनर पहिने
देख रही थी चोरी–चोरी
मेरे मीठे गीत प्यार के।''[18]

वर्तमान युग में तनाव, निराशा, कुण्ठा तथा भ्रष्टाचार आदि का बोलबाला है। कविवर माथुर ने जीवन–मूल्यों के विघटन का उद्‌घाटन इस प्रकार किया है–

''हर जीत के नाटक का बनता है भरत वाक्य
अपमानित जाति के चेहरे पर थप्पड़–सा
टूटता बलात्कार
मैं वहाँ था
ग्लानि की बरसात घूँट भर पीती हुई
लांछित जाति में
खलनायक इतिहास की उस क्रूर हंसी में
जो अब तक जंगल का परिशिष्ट है
जो अब आदमी का नहीं
आदमी के भीतर जानवर का न्याय है।''[19]

केवल यही नहीं इनके काव्य में सत्य, स्वाभिमान, युगबोध आदर्श और देश प्रेम की भावना की भी अभिव्यक्ति हुई है। कविवर माथुर देशवासियों को देश की रक्षा के लिए दीपक के समान अविरल रूप से जलने और सावधान रहने का संदेश देते हुए कहते हैं–

''आज जीत की रात
पहरूए सावधान रहना
खुले देश के द्वार
अचल दीपक समान रहना।
प्रथम चरण है नए स्वर्ग का
हैं मंजिल का छोर
इस जन मंथन से उठ आई
x x x
ले युग की पतवार
बने अम्बुधि महान् रहना
पहरूए सावधान रहना।''[20]

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि कविवर गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में सांस्कृतिक तत्त्वों का पर्याप्त मात्रा में निरूपण हुआ है। भौतिकवादी प्रतिस्पर्धा के इस काल में नैतिकता और संस्कार सतत् रूप से विघटन की ओर अग्रसर तो हुए हैं जिसके परिणामस्वरूप समाज में नित्य नवीन समस्याओं ने जन्म लिया। फलतः जीवन मूल्यों में गिरावट आई जिससे मानव जीवन लगातार रूप से अवनति की ओर अग्रसर हुआ। समाज की इस दशा को देखकर माथुर जी ने अपने काव्य में करूणा, त्याग, प्रेम, भाईचारा, सौहार्द, परोपकार आदि मूल्यों की स्थापना का अविरल प्रयास किया। साथ ही वर्तमान व्यवस्था पर करारा प्रहार भी किया ताकि सामाजिक–सांस्कृतिक ताना–बाना सुरक्षित एवं संरक्षित रह सके तथा विश्व कल्याण की कामना का भारतीय सांस्कृतिक दृष्टिकोण साकार हो सके तथा मानव जीवन का स्तर उन्नत हो सके।

संदर्भ सूत्र

1. गिरिजा कुमार माथुर, धूप के धान, पृ. 86
2. वही, साक्षी रहे वर्तमान, पृ. 38
3. वही, मैं वक्त के हूँ सामने, पृ. 21
4. वही, वही, वही,
5. वही, मंजीर, पृ. 04
6. वही, वही, पृ. 84
7. वही, धूप के धान, पृ. 23
8. वही, वही, पृ. 51
9. वही, शिलापंख चमकीले, पृ. 6–7
10. वही, वहीं, पृ. 80
11. वही, धूप के धान, पृ. 13
12. वही, मंजीर, पृ. 46
13. वही, धूप के धान, पृ. 17
14. वही, वही, पृ. 18–19
15. वही, कल्पांतर, पृ. 32
16. वही, धूप के धान, पृ. 21
17. वही, मंजीर, पृ. 43
18. वही, नाश और निर्माण, पृ. 62
19. वही, पृथ्वी कल्प, पृ. 70
20. वही, धूप के धान, पृ. 21